Impact Factor (SJIF): 6.092 E-ISSN: 2583-1615

International Journal of Research in Academic World

Received: 09/January/2024 IJRAW: 2024; 3(2):63-66 Accepted: 07/February/2024

प्राचीन भारत में जाति की उत्पत्ति का अवलोकन

*[1]डॉ. अनिल कुमार यादव

*[1]असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व विभाग पी0जी0 कालेज, पट्टी, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश

समाज के संचालन के लिए जाति व्यवस्था का निर्धारण किया गया है। समाज के उच्च आदर्शो को स्थापित करने के लिए रामायण और महाभारत का सहारा लिया जाता है, राम और कृष्ण के द्वारा तथा जाति के स्वरूप को कर्म के आधार पर बताना चाहते हैं, क्योंकि समाज में जो जातीगत भेदभाव विद्यमान थे उसे कर्ण समाज से समाप्त करना चाहता था, इसलिए निरंतर समाज में परिवर्तन की बात करता है, कि समाज का स्वरूप सरल होना चाहिए इसलिए वर्तमान में समाज के स्वरूप के लिए जाति की उत्पत्ति पर विचार किया जा रहा है कि समाज में जाति की अवधारणा कहाँ से आई जिसमें समाज जटिल होता जा रहा है।

मुख्य शब्दः जाति, वर्ग,वर्ण, व्यवसाय, समाज।

प्रस्तावना

सामाजिक संगठन में जाति–व्यवस्था एक विशिष्ट रूप में दिखाई पड़ता है। समाज में जातीय समूहों में अन्तर दिखाई पड़ता है। फिर भी उनमें पारस्परिक प्रेम एवं गतिशीलता विद्यमान है। इस व्यवस्था के विकास के अनेक कारक बताए गए हैं जैसे वर्ण संकर विवाह, विदेशी आक्रमण, विभिन्न व्यवसायिक गतिविधियां आदि ऐसे कई कारण है। आज भी भारत जाति–हिन्दू समाज, मुस्लिम, सिक्ख तथा अन्य समाजों में भी विद्यमान है।

जाति शब्द का वैदिक साहित्य में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। [1] निरुक्त में 'कृष्ण जातीय' शब्द का प्रयोग मिलता है। वहां कहा गया है कि अग्नि प्रज्वलित करने के बाद किसी भी व्यक्ति को रमा के पास नहीं जाना चाहिए। रमा रमण के लिए है। वह कृष्ण जातीय है। [2] पाणिनी ने भी जात्यन्तक शब्द का प्रयोग ब्राह्मण के लिए किया गया है। [3] यह इस बात का सूचक हैं कि ईसा पूर्व पांचवी शती तक समाज में जाति प्रथा प्रतिष्ठित हो गयी थी तथा चारों वर्ण भी कठोर होकर जाति का रूप लेने लगे थे। धर्मसूत्रों से जातियों का वर्णन प्राप्त होता है।

जाति शब्द जन से बना है जिसका अर्थ होता है जन्म लेना। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जाति वर्ण से पृथक संस्था है। वर्ण मात्र चार हैं जबकि जातियां अनेक हैं। वर्ण परिवर्तन सरल किन्तु जाति परिवर्तन कठिन था। जातियों का निर्माण श्रम विभाजन, वर्ण विहित विशिष्ट कर्मों के शिथिलीकरण, श्रेणी सृजन तथा सूत्रकालीन समाज में निवासित आर्य एवं आर्येत्तर जनजातियों एवं समूहों का आर्य जाति में सम्मिलन आदि के कारण तेजी से आरम्भ हुआ।

जाति प्रथा का उद्भव सिद्धान्त

जाति प्रथा की उत्पत्ति के लिए विभिन्न विद्वानों ने भिन्न–भिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। ये सिद्धान्त विचार दर्शन से प्रभावित हैं जो निम्न हैं:–

1. **व्यवसायिक उत्पत्ति का सिद्धान्तः** विभिन्न पेशों अथवा व्यवसायों के आधार पर भी जाति प्रथा की उत्पत्ति मानी गई है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक नेसफील्ड हैं। इनके अनुसार जातियों का जन्म व्यवसायिक विभिन्नता के कारण हुआ। एक व्यवसाय करने वाले समान वर्ण में गठित हो गये और व्यवसायिक उच्चता तथा निम्नता ही जाति की उच्चता एवं निम्नता का आधार बनी। उच्च वर्ग के लोग ब्राह्मण कहा गया और निम्न वर्ग को शूद्र कहा। बाद में क्षत्रिय और वैश्य को समाज में स्थापित कर दिया गया तथा

*Corresponding Author: डॉ. अनिल कुमार यादव

ऊंच–नीच की भावना ने ही समाज में जातिगत भेद–भाव को जन्म दिया।

जर्मन विद्वान दहलमैन ने भी नेसफील्ड के इस मत का समर्थन किया तथा बताया है कि प्रारम्भ में जो वर्ग थे वे व्यवसायिक आधार पर श्रेणियों में बदल गये। श्रेणियां बाद में कठोर होकर जातियों में बदल गयी। इनकी अपनी अलग–अलग परम्परायें हो गयी तथा अन्तर्जातीय विवाह एवं परस्पर खान–पान पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

वास्तव में व्यवसायिक आधार पर जाति प्रथा की उत्पत्ति बताने का मत कुछ सीमा तक तर्कसंगत है क्योंकि प्राचीन भारतीय समाज में बहुत सी जातियां व्यवसायिक ही थी परन्तु एक मात्र व्यवसाय को ही जाति प्रथा की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी मानना सही नहीं होगा। हमें ज्ञात है कि मध्य यूरोप, मिस्र आदि में भी व्यवसायिक आधार पर वर्गों का गठन हुआ किन्तु कही भी जाति जैसे कठोर संस्था का जन्म नहीं हुआ। यह मत भारतीय परम्परा की पूर्ण उपेक्षा करता है। समान व्यवस्था करने वाले लोगों के बीच ऊंच–नीच की भावना मिलती है। अतः यह सिद्धान्त पूर्ण रूप से जाति प्रथा की उत्पत्ति की विवेचित नहीं कर पाता है।

2. **प्रजातीय उत्पत्ति का सिद्धान्तः** प्रजाति से तात्पर्य ऐसे मनुष्यों के समूह से है जिन्हें प्राणि–विज्ञान के कुछ सामान्य शारीरिक लक्षणों के आधार पर दूसरों से अलग किया जा सकता है। ये समूह भिन्न–भिन्न स्थानों में बिखरे होने पर भी एक ही प्रजाति का निर्माण करते हैं। इस सिद्धान्त को सर्वप्रथम हरबर्ट रिजले ने प्रस्तुत किया और बताया कि जाति–प्रथा की उत्पत्ति प्रजातीय विभेदों के कारण हुई। [5] भारोपीय (इण्डो–आर्यन) जब भारत में आये तो उन्होंने यहां के मूल निवासियों को पराजित कर उन पर अपना अधिकार कर लिया। उनकी शारीरिक विशेषतायें उन्हें यहां के निवासियों से अलग करती थी। उन्होंने अपने को श्रेष्ठ माना तथा अपने रक्त पर गर्व किया। पराजित जातियों की कन्याओं के साथ उनके विवाह हुए जिससे पंजाब क्षेत्र में कई जातियॉ उत्पन्न हो गयी। इस प्रकार से उत्पन्न जातियां आर्य समाज में स्वीकृत नहीं की गयी जिसके कारण वे अलग रह गयी। कालान्तर में उनकी संख्या बढ़ गयी। धुर्ये ने भी इस मत का समर्थन करते हुए बताया है कि आर्य समाज में अन्तवर्ण विवाह की जो प्रथा प्रचलित थी उसका प्रचार यहां की पराजित जातियों में उन्होंने किया। इससे समाज में कई जातियां उत्पन्न हो गयी। इस प्रथा का प्रचार सर्वप्रथम गंगा के मैदानों में हुआ तथा बाद में यह अन्य भागों में फैल गयी। एन0के0 दत्त, एच0राव आदि विद्वानों ने भी इस सिद्धान्त का समर्थन दिया।

उपर्युक्त सिद्धान्त जाति प्रथा की उत्पत्ति की पूर्ण व्याख्या नहीं कर पाता। प्रजातीय विभेदों का क्रम केवल भारत तक ही सीमित नहीं था। विश्व के कुछ अन्य देशों जैसे दक्षिणी अफ्रीकी, अमेरिका आदि में भी प्रजातीय विभेद मिलते हैं। किन्तु वहां जाति जैसी कठोर संस्था की उत्पत्ति नहीं हो सकी। भारत में आने वाले इसाई तथा मुस्लिम जातियों में भी प्रजातीय विभेद विद्यमान थे किन्तु उनकी विभिन्न जातियां नहीं बन पाई। इस प्रकार मात्र प्रजातीय आधार पर ही जाति प्रथा की उत्पत्ति ढूढना सही प्रतीत नहीं होता हैं।

3. **ब्राह्मण उत्पत्ति का सिद्धान्तः** इस सिद्धान्त का प्रतिपादन डुबायसन, धुर्ये, इबेटसन आदि विद्वान ने बताया कि जाति–प्रथा का निर्माण ब्राह्मणों की सुविचारित चाल या विचार की देन है। उनके अनुसार ब्राह्मणों ने समाज में अपनी श्रेष्ठता एवं उच्चता कायम रखने के उद्देश्य से ही प्रथा रचना की थी। अपनी बुद्धि द्वारा उन्होंने विभिन्न वर्गों के व्यवसाय सुनिश्चित किये तथा शास्त्रीय मान्यता प्रदान कर दिया। इससे उनके द्वारा बनाये गये नियमों का पालन करना सबके लिए अनिवार्य हो गया। धुर्ये के अनुसार 'जाति व्यवस्था इण्डो–आर्यन संस्कृति के ब्राह्मणों का शिशु है जो गंगा–यमुना के मैदानों में विकसित हुआ तथा यहां से देश के अन्य भागों को पहुंचाया गया। [6] इस प्रकार यह पूरी योजना ब्राह्मणों के मस्तिष्क की उपज थी जिसमें बड़ी चालाकी से उन्होंने अपनी स्थिति को उच्च बना लिया और शूद्रों को इस व्यवस्था में सबसे निम्न स्तर पर रख दिया गया।

यह कहा जा सकता है जाति प्रथा एक प्राचीन संस्था है। इसे मात्र ब्राह्मणों की चाल का परिणाम नहीं कहा जा सकता है।

4. **प्रागैतिहासिक उत्पत्ति का सिद्धान्तः** इस सिद्धान्त का प्रतिपादन हट्टन ने किया है। उनके अनुसार आर्यों के आगमन के पूर्व भारतीय आदिम जातियों में कुछ ऐसी परम्परायें, विश्वास एवं निषेध विद्यमान थे जिनसे जाति प्रथा का जन्म हुआ। इन प्रथाओं एवं विश्वासों के आधार पर वे विभिन्न समूहों में बंटी हुई थी। वे 'माना' नामक एक आधिभौतिक शम्बि में विश्वास रखती थी। यह मान्यता थी कि यह शम्बि प्रत्येक तत्व में विद्यमान है तथा अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के फल देती है। इस शक्ति के भय से समान स्थान पर रहने वाले लोग अपरिचितों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने पर भी नियंत्रण एवं निषेध रखते थे। आज भी असम की नागा जातियों में हम इस प्रकार की प्रथा पाते हैं। एक गांव के पहाड़ी लोग प्रायः एक ही व्यवसाय अपनाते थे। 'माना' में विश्वास के कारण ही आपसी खान–पान एवं अन्य सामाजिक सम्बन्धों के ऊपर नियंत्रण स्थापित हुआ। क्रमशः इनका विकास हुआ तथा ये तत्व ही बाद जाति प्रथा को जन्म देने में सहायक सिद्ध हुए। आर्यों ने इस प्रकार के विभाजन को सुदृढ़ आधार प्रदान कर दिया।

हट्टन का यह मत एकांगी है, हमें ज्ञात है कि इस प्रकार की प्रथायें एवं निषेध विश्व के दूसरे भागों में

भी पाये जाते हैं किन्तु कहीं भी भारत जैसी जाति प्रथा का जन्म नहीं हो पाया। अफ्रीका निवासियों में भी इसी प्रकार के निषेध मिलते हैं। अतः आदिम परम्पराओं को जाति प्रथा की उत्पत्ति में एक कारण तो माना जा सकता है किन्तु इसे ही प्रधान कारण मानना तर्क संगत नहीं लगता।

5. **धार्मिक उत्पत्ति का सिद्धान्तः** जाति प्रथा का उद्भाव धार्मिक क्रियाओं और कर्मकाण्डों के आधार पर माना गया है। ए0एम0 होकार्ट के अनुसार प्राचीन भारतीय विविध धार्मिक कृत्यों के फलस्वरूप विभिन्न जातियां अस्तित्व में आई। सेनार्ट का मत है कि जाति प्रथा देवताओं को बलि प्रदान करने का संगठन है क्योंकि हिन्दू समाज में देवताओं को भेंट चढ़ाना धार्मिक कृत्य स्वीकार किया गयाय है।[7] प्राचीन हिन्दू समाज में देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बलि दी जाती थी। पशुओं तथा मनुष्यों तक की बलि का विधान था। इस कर्मकाण्ड के निमित्त विभिन्न वर्गों की आवश्यकता पड़ती थी। ब्राह्मण तथा अन्य उच्च वर्गों के लोग पशुओं की हत्या का कार्य स्वयं नहीं कर सकते थे। इस कार्य के लिये निम्न वर्ग को नियुक्त किया जाता था। हवन सामग्री लाने तथा एकत्रित करने वाले का भी अलग वर्ग था। इसी प्रकार के कुछ अन्य वर्ग भी थे जो बलि के कार्य में मदद देते थे। बाद में इन सभी की अलग–अलग जातियां बन गयी। हिन्दू समाज के विभिन्न वर्गों में व्यवसायों का जो विभाजन हुआ, वह भी धार्मिक आधार पर किया गया। समान धार्मिक कार्यों को करने वालों के समान व्यवसाय हो गये। बाद में विभिन्न वर्गों में रूढ़ता आई तथा उनकी अनेक जातियां बन गयी। इस प्रकार धर्म ही जातियों की उत्पत्ति में मुख्य कारक रहा। किसी जाति की उत्पत्ति केवल धर्म के आधार पर नहीं हो सकती है जाति प्रथा की उत्पत्ति में विभिन्न सिद्धान्त होते हैं।

6. **भौगोलिक उत्पत्ति का सिद्धान्तः** इस सिद्धान्त का प्रतिपादक श्री गिलबर्ट ने किया और बताया कि विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के समूह ही कालान्तर में अनके जातियों में परिवर्तित हो गए और बाद में विभिन्न स्थानों के निवासियों की भिन्न–भिन्न जातियां बन गयी। बंगाल के निवासी गौड़ कहें, दक्षिण के दक्षिणात्य, त्रिवर गांव के लोग तिवारी कहलाये। इसी प्रकार भौगोलिक आधार पर कुछ जातियों की उत्पत्ति हो गयी।

उपरोक्त सभी सिद्धान्तों की समीक्षा करने पर यह कहा जा सकता है कि इस जटिल संस्था की उत्पत्ति के लिये किसी कारण–विशेष को उत्तरदायी मानना उचित नहीं होगा। वस्तुतः जाति प्रथा की उत्पत्ति विभिन्न कारणों के संधात्र से हुई। हट्टन ने बताया कि 'भारत की जाति–प्रथा' विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं भौगोलिक तत्वों के पारस्परिक प्रभावों का स्वाभाविक परिणाम है जो अन्यत्र कहीं भी एक साथ नहीं मिलते हैं।

जाति प्रथा की विशेषतायें:

एन0के0 दत्त [8] ने भारतीय जाति प्रथा की कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया है जो निम्न हैः–

1. किसी व्यक्ति की जाति उसके जन्म से निर्धारित होती है।
2. विभिन्न जातियों के व्यक्ति अपनी जाति के अतिरिक्त किसी अन्य जाति में विवाह नहीं कर सकते।
3. एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति में खान–पान पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है।
4. जातियों में ऊंच–नीच की भावना रहती है जिसमें ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान रहता है।
5. अधिकांशतः विभिन्न जातियां सुनिश्चित व्यवसाय का अनुसरण करती है।
6. एक जाति में दूसरी जाति में संक्रमण सम्भव नहीं है।
7. ब्राह्मण जाति की प्रतिष्ठा सम्पूर्ण संगठन का आधार स्तम्भ होती हो।
8. समाज प्रत्येक जाति को कुछ नागरिक या धार्मिक अधिकारों से वंचित करता है जैसे कि कुएं पर चढ़ने या मंदिर में प्रवेश पर प्रतिबंध।
9. प्रत्येक जाति के नियम है। इनका संबंध पारिवारिक नियमों के उल्लंघन से है। जैसे कि पत्नी को निर्वाह के लिए धन न देना, रखैल स्त्री रखना, पर स्त्रीगमन, पर स्त्री का शीलभंग करना, ऋण न चुकाना, ब्राह्मण का निरादर करना, जाति के परंपरागत नियमों का पालन न करना। उनका पालन न करने वाले व्यक्तियों को जाति की पंचायत या सरपंच दंड देता है।

डॉ0 धुरिये ने जाति की विशेषताओं के सम्बन्ध में लिखा है कि जाति व्यवस्था विभिन्न जातीय समूह में खान–पान तथा सहवास पर विभिन्न प्रतिबन्ध तथा नियम प्रतिपादित करती है। जाति व्यवस्थाओं के स्वतंत्र चुनाव पर प्रतिबन्ध लगाता है। प्रत्येक जाति के अलग–अलग व्यवसाय निश्चित है तथा उनके सदस्यों को अपने जातिगत व्यवसाय ही करने होते हैं।

जाति और वर्ग में अन्तर

जाति और वर्ग में निम्न अंतर हैः–

1. जाति प्रणाली एक बन्द वर्ग है। जहां वर्ग प्रणाली एक मुक्त वर्ग है। जाति में जन्म से सामाजिक स्तर निर्धारित होता है और किसी अन्य जाति में सम्मिलित होने का अवसर नहीं मिलता है। वर्ग प्रणाली में मनुष्य की असमानताएं मान्य होती है और उनकी उन्नति के लिए समान अवसर दिये जाते हैं। व्यक्ति एक वर्ग से दूसरे वर्ग में अपनी प्रयास के द्वारा प्रवेश कर सकता है।
2. जाति में पेशे हैं, वर्ग में नही–जाति प्रथा में सभी के कार्यों का निर्धारण किया गया है। वर्ग में किसी का

कार्य निश्चित नहीं होता है। सभी लोग अपनी योग्यतानुसार किसी भी पेशे को अपनाने के लिए स्वतंत्र है।

3. जाति में व्यक्तिगत क्षमता और योग्यता की उपेक्षा की जाती है। नीची जाति के व्यक्ति को उसकी योग्यता और क्षमता के अतिरिक्त भी उन्नति के लिए अवसर नहीं दिया है परन्तु वर्ग में व्यक्ति अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार समाज के शीर्ष पर पहुंच सकता है।
4. जाति के आधार जन्म होता है, किन्तु वर्ग का नहीं। वर्ग का आधार पेशा होता है।
5. जाति में खान–पान पर प्रतिबंध है, वर्ग में नहीं।
6. जाति में विवाह अपने ही जाति में करते हैं। अन्तर्जातीय विवाह की आज्ञा नहीं होती है। पर वर्ग व्यवस्था के अन्तर्गत विवाह सम्बन्धी कोई निश्चित नियम नहीं होता है कि एक वर्ग का सदस्य दूसरे वर्ग के सदस्य के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित कर सकता है।
7. जाति व्यवस्था में व्यतीत के कार्यों को एक विशेष रूढ़ियों और नैतिकता के आधार पर निश्चय कर दिया जाता है परन्तु ऐसी व्यवस्था वर्ग प्रणाली में नहीं है।

वास्तव में वर्ग और जाति सामाजिक स्तरीकरण से दो प्रमुख आधार हैं। यद्यपि जाति और वर्ग की प्रकृति के आधार पर इसके बीच अनेक अन्तर बताया जा सकता है लेकिन व्यवहारिक रूप से विभिन्न वर्गों के बीच की सामाजिक दूरी को बनाये रखने के वे सभी प्रयत्न किये जाने हैं।

जाति एवं वर्ण में अन्तर

जाति एवं वर्ण में मूलतः बड़ा अन्तर है। जाति शब्द 'जन' धातु से बना है जन्म लेना इसके विपरीत वर्ण शब्द 'बृज' धातु से व्युत्पन्न है, जिसका तात्पर्य 'वरण' करना अथवा 'चुनना'। वर्ण शब्द से बोध 'वृत्ति' का भी ज्ञान होता है जिसे व्यवसाय विशेष करूᡃ में मनुष्य चुनता है या अपनाता है। वर्ण मात्र चार हैं जबकि जातियां अनेक हैं। वर्ण परिवर्तन सरल किन्तु जाति परिवर्तन कठिन था। विभिन्न जातियों के बीच पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्ध एवं खानपान पर भी प्रतिबंध था। वर्ण व्यवस्था में इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं था। वर्ण व्यवस्था समानता की नीति पर आधारित है और उसके अन्तर्गत सभी वर्ण का महत्व है। परन्तु जाति–व्यवस्था असमानता को जन्म देने वाली है।

डॉ0 गोखले ने जाति तथा वर्ण का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि जाति का निर्धारण जन्म के आधार पर किया जाता था तथा वर्ण का निर्धारण शरीर के रंग के अनुसार किया जाता है। जैसे आर्य एक जाति थी और उसी प्रकार अनार्य भी एक जाति थी परन्तु 'वर्ण' शब्द का प्रयोग जाति के लिए नहीं वरन् रंग के लिए किया जाता था। जब गौर वर्ण आर्यों के लिए तथा अनार्यों के लिए काले वर्ण के रूप में लिया। इस तरह जाति और वर्ण में यही अन्तर है। अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत में जातियों के उत्पन्न के लिए विभिन्न सिद्धान्त बताये गये हैं फिर जाति, वर्ग और वर्ण में विभाजित होकर सामाजिक जीवन को सुचारु रूप से संचालित करते हैं।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध का निष्कर्ष यह है की जाति की उत्पत्ति कैसे हुई तथा समाज में वर्ण, जाति और वर्ग में अंतर दिखाई पड़ता है। इस अंतर के परिणाम स्वरुप पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा और पंजाब में खाप पंचायत का वर्चस्व दिखाई पड़ता है। सभी लोग अपनी ही जाति में निवास करते हैं और उसके विभिन्न प्रकार के प्रतिबंध लगाए गए हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिद्धान्तालंकार, सत्यव्रत, भारत की जनजातियां तथा संस्थाएं, पृष्ठ 292
2. अग्नि चित्वारमामुपेयात्। रमणायोंपेयते न धर्मायं। निरुक्त 12–13
3. जात्यान्ताच्छ बन्धुनि–पाणिनी–5,4,9।
4. नेसफील्ड, ब्रीफ व्यू ऑफ द कास्ट सिस्टम, पृ0 7
5. रिजले, द पीपल ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 5, 10, 29
6. ईजम पद पदकपं पे जीम ठतीउंदपब बीपसक वि जीम ज्तमसव ।तलंदेए बतंकसमक पद जीम संदक वि जीम ळंदहं ंदक जीम ल्उनदं ंदक जतंदेमितततमक जव वजीमत चंतजे वि जीम बवनदजतलण जी0एच0 धुर्ये, कास्ट क्लास एण्ड आकुपेशन, पृष्ठ 165–68।
7. सेनार्ट, दत्ता द्वारा उद्धत ओरिजिन एण्ड ग्रोथ ऑफ कास्ट इन इण्डिया, पृष्ठ 2,19,32
8. एम0के0दत्त, ओरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ कास्ट इन इण्डिया, पृष्ठ 3।